~~EAST & WEST ACADEMY~~

SUB : WORLD HISTORY

HINDI NOTES B.A II Hons and B.A III G

धर्मसुधार आन्दोलन

सोलहवीं शताब्दी में योरोप, सुधारवादी आन्दोलन के गहरे प्रभाव में रहा, [illegible] को क्रमिक चरणों में देखा और विश्लेषित किया जा सकता है । [illegible] प्रोटेस्टेण्ट सुधारवादी आन्दोलन तथा द्वितीयतः कैथोलिक । यद्यपि ये सुधारवादी आन्दोलन अपने मूलस्वरूप में धार्मिक कारणों से प्रेरित थे किन्तु सम्पूर्णतः "धार्मिक आन्दोलन " कहना और समझना अनुचित होगा ।

मध्य-युग की उत्तरकालीन अवधि में, रोमन कैथोलिक चर्च की विभिन्न [illegible] के पादरी , कुछ बुनियादी सिद्धांतों को लेकर अत्यन्त असंतुष्ट थे । [illegible] असंतुष्ट लोगों को यह विश्वास हो चला था कि रोमन कैथोलिक चर्च [illegible] प्रारम्भिक धर्म-प्रणेताओं की शिक्षा एवं धर्म के मूल सिद्धांतों की भावना [illegible] अनुसार व्यवहार नहीं करता है, वरन् उनसे दूर होता जा रहा है । ऐसे चर्च [illegible] ईश्वर द्वारा नियुक्त इसाई धर्म का संरक्षक और रहनुमा मानने को वे अब तैयार न थे । अतः अब वे चर्च को कोई एक विशिष्ट संस्था मानने के बजाय [illegible] -मसीह में विश्वास करने वाले लोगों एवं इसाई धर्म के अनुयायियों का कुल [illegible] मानकर चर्च को परिभाषित करने लगे थे । चर्च के संगठन द्वारा किये जाने [illegible] निर्णयों एवं चर्च की परम्पराओं के बजाय अब वे सुधारवादी प्रवृति वाले [illegible] केवल धर्म -शास्त्र की पुस्तकों में उल्लिखित नियम और निर्देशों को ही इसा[illegible] धर्म के विश्वासों का एक मात्र-आधार और धर्म-सत्ता मानने को उद्यत [illegible] उनमें (सुधारवादियों में) एक नयी धारणा यह विकसित होने लगी थी [illegible] मानव और ईश्वर में सीधा-प्रत्यक्ष सम्बंध स्थापित हो सकता है । अतः [illegible] पादरियों एवं रोमन कैथोलिक चर्च के कर्मकाण्डीय अनुष्ठानों और संस्कारों [illegible] मध्यस्थ भूमिका का महत्व घटने लगा । अतः रोमन कैथोलिक पादरियों [illegible] पदसोपानात्मक व्यवस्था, विश्वास और क्रिया -कलापों के खिलाफ सुधारव[illegible] भावना से प्रेरित लोग आवाजें बुलन्द करने लगे । पश्चिमी यूरोप के देशों [illegible] मौजूद चर्च के संगठन इस सैद्धांतिक आधार पर रोमन कैथोलिक चर्च से अ[illegible] सम्बंध विच्छेद करने लगे और सुधारवादी आन्दोलन का यही सर्वाधिक मौ[illegible] कारण बना ।

सैद्धांतिक मामलों के अतिरिक्त, 14वीं तथा 15 वीं शताब्दियों के दौरान चर्च [illegible] अनेक बुराईयाँ और विकृतियाँ उत्पन्न हो गई थीं । ऐसी अनेक बुराईयों में [illegible] थी - पादरियों की अज्ञानता एवं लौकिक जीवन के प्रति उनका आकर्षण [illegible] झुकाव, चर्च के पदों एवं सेवाओं की बिक्री करने की प्रवृति, चर्च के [illegible]

(भाई -भतीजावाद, एक ही) व्यक्ति द्वारा अनेक ऐसे महत्वपूर्ण पदों पर अधिकार किया जाना जिनसे सम्बन्धित अधिकारों-सेवाओं का निर्वाह करना एक ही व्यक्ति के लिए असम्भव होता था। ये सभी कारण चर्च की व्यवस्था के खिलाफ व्यापक जन-असंतोष उत्पन्न कर रहे थे।

सबसे उच्च पदों पर अपने सम्बन्धियों को नियुक्ति

चर्च के अनेकों उच्च पदस्थ पादरी और कई पोप भी, पुनर्जागरण द्वारा प्रेरित धर्म-निरपेक्षता के सिद्धांतों की चपेट में आ चुके थे तथा मानवतावादी कृत्यों में उन्हें अधिक रस मिलने लगा था। अतः वे अपने भाई -बन्दों (पादरियों) के हित-स्वार्थों की परवाह न करते हुए मानवतावादी क्रिया-कलापों की ओर आकृष्ट होने लगे थे। अन्ततः चर्च की पदसोपानात्मक व्यवस्था ने भी स्वयं में उत्पन्न हो गयी बुराईयों की गम्भीरता को समझा और उन्हें दूर करने के लिए आवश्यक कदम भी कठोरतापूर्वक उठाये। लेकिन तबतक देर हो चुकी थी और पश्चिमी योरोपीय देशों के अनेक चर्चों ने रोम से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था।

राजनीतिक दृष्टि से, राष्ट्रीय -राज्यों का उदय तथा इनके प्रति स्थानीय निष्ठा ने भी रोमन कैथोलिक चर्च के अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र को आघात पहुंचाया। राष्ट्रीय सम्राट और शासक अपनी प्रजा पर पोप के नियंत्रण के खिलाफ अधिकाधिक ईर्ष्यालु होते गए और अनेक अवसर पर उन्होंने स्वदेशी प्रोटेस्टेण्ट आन्दोलन और उसके नेताओं को समर्थन एवं सहायतायें भी दी।

आर्थिक प्रेरणाओं ने निसंदेह बेहद असरदार भूमिका निभायी। चर्च द्वारा लगाये और वसूल किये गये करों के माध्यम से, विभिन्न देशों की राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्थाओं से यथेष्ट धन खिंच कर रोम चला जाता था। सम्पूर्ण पश्चिमी योरोप की काफी उपजाऊ भूमि चर्च की अधीनता में कर मुक्त थी, जिसके कारण खासी ईर्ष्या पैदा हो रही थी। चर्च द्वारा सूद एवं व्यापारिक ऋणों को खिलाफत करने एवं कृषि सामन्ती वर्ग को समर्थन देने के कारण नवोदित पूंजीपति वर्ग भी चर्च के खिलाफ कटुता से भरता जा रहा था।

अन्ततः बुद्धिवादियों के मानवतावादी उपदेशों एवं क्रियाकलापों ने जनमानस पर चर्च की पकड़ अनेक तरह से ढीलाकर दिया। इरैस्मस तथा अन्य मानव -वादियों ने चर्च के अंधविश्वासों और अतार्किक-मान्यताओं के खिलाफ व्यंग्य और उपहास के पहाड़ खड़े कर दिये। जिन धर्म शास्त्रों में वर्णित सिद्धांतों और उपदेशों की दुहाई चर्च अबतक दिया करते थे, उन धर्म -शास्त्रों का स्थानीय जन भाषाओं में विद्वतापूर्ण अनुवाद तथा धर्म -शास्त्रों का आलोचनात्मक अध्ययन कर इन बुद्धिवादी विद्वानों ने चर्च द्वारा की गई गलतियों को जनसाधारण के समक्ष सुस्पष्टतः प्रदर्शित कर दिया।

14वीं शताब्दी में ही, इंगलैण्ड में जोन वाइक्लिफ तथा बोन जोन हसमस ने रोमन कैथोलिक चर्च के खिलाफ आवाज उठानी शुरू कर दी थी। सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में चर्च के खिलाफ धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा बौद्धिक विरोध अपने-अपने चरम बिन्दुओं तक पहुंचने लगा था। अब खुले-आम विद्रोह करने के लिए महज एक प्रभावशाली नेता तथा भावनाओं को भड़काने वाली किसी घटना की आवश्यकता रह गयी थी।

प्रकृति -- प्रोटेस्टैण्ट सुधारवादी आन्दोलन तीन प्रमुख एवं अन्तः-सम्बन्धित आन्दोलन से उत्पन्न हुआ था। लूथरवादी आन्दोलन, काल्विनवादी तथा ऑंग्लवादी आन्दोलन। इन तीनों प्रमुख शाखाओं एवं उन अनेकों छोटे-छोटे

कुमियानी सम्प्रदायों जिन्हें एनाबैपटिस्टस कहा जाता था, – ने उन सैकड़ों प्रोटेस्टैण्ट सभाओं वाले सम्प्रदायों को जन्म दिया जो आज भी मौजूद हैं।
लूथर (1483 – 1546) एक जर्मन नागरिक थे जिन्होंने साधु जीवन अपनाकर एक मठ (चर्च) में रहना प्रारम्भ किया। वे अत्यन्त जिज्ञासु एवं संवेदनशील ढंग से यह जान लेना चाहते थे कि (उनकी) आत्मा की स्थिति क्या है ? इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर उन्होंने सन्त अगस्ताईन तथा सन्त पॉल के लेखों का अध्ययन प्रारम्भ किया। सन्त पॉल द्वारा लिखित "रोमनों के नाम पत्र" (लेटर टू द रोमनस) में उन्होंने एक जगह लिखा पाया कि "सही लोग विश्वास के सहारे जियेंगे– "द जस्ट शैल लिव बाय फेथ"। यह सोच पढ़कर अचानक लूथर को एक विचार कौंधा कि श्रद्धा मोक्ष (या आत्मा की मुक्ति) का साधन है। अच्छे कार्य करने से या धार्मिक तौर–तरीकों, अनुष्ठानादि –संस्कार करने के बजाए ईसा में सरलतापूर्वक विश्वास करना ही काफी है। कई वर्षों तक चिन्तन–मनन के पश्चात, इस मूल अवधारणा के आधार पर उन्होंने अपनी धार्मिक मान्यताओं का वैचारिक ढाँचा प्रस्तुत किया। कई वर्षों तक वे दर्शनशास्त्र एवं धर्म शास्त्र का अध्यापन करते रहे और इस बात से बिल्कुल बेखबर रहे कि "केवल विश्वास के द्वारा ही मोक्ष (या मुक्ति) पाया जा सकता है" – की उनकी अपनी मौलिक धारणा का चर्च में प्रचलित अन्धविश्वासों –रूढ़ियों से कैसा अन्तर्विरोध है। उन्होंने चर्च के सिद्धांत तथा आसक्ति –भोग के खिलाफ 95 प्रस्ताव प्रस्तुत किये, जो इस उथल–पुथल की शुरुआत मानी जाती है जिसके फलस्वरूप पश्चिमी योरोप के चर्चों ने रोमन कैथोलिक चर्च से अपने सम्बंध तोड़ लिये। उन्होंने पुस्तिकाओं की एक श्रृंखला प्रकाशित की, जिसमें पोप एवं इसके धर्म संगठन के खिलाफ आक्रामक–आलोचना की गयी थी तथा जर्मन राजाओं राजकुमारों का आह्वान किया गया था कि वे अपने–अपने क्षेत्रों में मौजूद चर्च एवं उसकी सम्पत्ति जब्त कर लें तथा स्वयं को जर्मनी के ईसाई –चर्च का प्रमुख घोषित कर दें।
पूर्व–संचार के लिए पोप के आदेश – पत्रों की उन्होंने अवहेलना की और उनके विचारों की प्रभावशाली अभिव्यक्ति ने जर्मनी में धार्मिक एवं सामाजिक खलबली मचा दी। लगभग प्रत्येक व्यक्ति को कोई–न–कोई ऐसी शिकायत अवश्य थी जिसकी वजह से वह नेतृत्व के लिए लूथर की ओर अपेक्षाभरी दृष्टि से देख रहा था। लूथर ने अन्ततः अपनी धार्मिक मान्यताओं को सूत्र–बद्ध कर एक नया धर्म प्रस्तुत किया, जो प्रत्येक ईसाई विश्वास एवं सिद्धिवादी मान्यता के लिए केवल मूल धर्मशास्त्र की अधीनता स्वीकार करता था तथा उनमें उल्लिखित आदेशों एवं उपदेशों को ही प्रामाणिक स्रोत के रूप में स्वीकार करता था। उन्होंने बाइबिल का जर्मन भाषा में अनुवाद किया, ताकि आमलोग भी इसे पढ़–समझ सकें। उन्होंने चर्च का तात्पर्य ईसा मसीह में विश्वास करने वाले समस्त अनुयायियों को समझा न कि रोमन–कैथोलिक या अन्य किसी धर्म –संगठन को। उन्होंने पोप, बिशप आदि की पदसोपानात्मक व्यवस्था को हटाकर पुजारियों के महत्व को सामान्य तौर पर घटा दिया। उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों या देशों के धर्म–निरपेक्ष शासकों को अपने क्षेत्र के चर्चों का प्रधान घोषित किया। उन्होंने पादरियों के लिए प्रचलित ब्रह्मचर्य के नियम को भी समाप्त कर दिया तथा अविवाहित पादरियों के रहने के लिए मठों की व्यवस्था भी समाप्त कर दी। उन्होंने स्वयं एक "नन" (स्त्री पादरी) से विवाह किया। चर्च में पूजन–विधियों

को अत्यन्त सरल बना दिया तथा रोमन कैथोलिक चर्च में प्रचलित सात सांस्कारिक –अनुष्ठानों को घटा कर केवल दो अनुष्ठानों को ही अपनाया।
वर्ष 1546 में लूथर की मृत्यु हुई । लेकिन जर्मनी के सम्पूर्ण- उत्तरी आधे भाग में लूथरवाद की विजय हुई और जल्द ही यह डेनमार्क , नार्वे, स्वीडेन तथा बाल्टिक प्रान्तों में फैल गया। इसके पश्चात शुरू होने वाले सभी प्रोटेस्टैण्ट आन्दोलनों को लूथरवाद ने अतिशय प्रेरित एवं प्रभावित किया।

<u>काल्विनवाद</u> -- काल्विन का जन्म फ्रांस में, वर्ष 1509 में हुआ था। लूथर के साथ-साथ इन्हें भी प्रोटेस्टैण्ट इसाई धर्म की स्थापना का प्राथमिक श्रेय प्राप्त है। सम्भवतः इसाई धर्म शास्त्र को कैल्विन द्वारा दिया गया सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान, उनके द्वारा प्रतिपादित ईश्वर की उदात्त अवधारणा है। "इन्सटीच्यूटस ऑफ द क्रिश्चियन रेलिजन" नामक अपनी पुस्तक में उन्होंने सृष्टिकर्ता को इतना उदात्त, तेजस्वी और प्रेरक बताया है कि उसकी तुलना में मनुष्य अत्यन्त तुच्छ प्रतीत होता है तथा मुक्ति (या मोक्ष) का मार्ग चाहे पूर्वनिर्धारित नियतिवश हो सम्पूर्णतः तर्कसंगत प्रतीत होता है। काल्विन के अनुसार , ईश्वर या सृष्टिकर्ता ने प्रारम्भ से लेकर "अन्त काल" तक की सम्पूर्ण योजना (या रूपरेखा) बनायी । अपने अकल्पनीय तार्किक कारणों के अन्तर्गत ईश्वर ने उन मनुष्यों को चुना जो उसका सरंक्षण और सामीप्य पायेंगे तथा उन मनुष्यों को भी चुना जो निन्दा-तबाही और घृणा पायेंगे। जिन मनुष्यों का ईश्वर ने संरक्षण –सुरक्षा के लिए चुनाव किया, उनके मानस में उसने ईसा-मसीह के प्रति विश्वासभाव के बीज बो दिये तथा ईसाई धर्मानुकूल आचरण-व्यवहार करने की अदम्य इच्छा भर दी, ताकि वे ईश्वर के स्वर्गिक राज्य को धरती पर उतार लाने के लिए कृतसंकल्प हो जाएँ । काल्विन ने धर्म के अपने सिद्धांतों को पवित्र धर्मशास्त्रों में लिखित निर्देशों , विशेषकर सन्त पॉल एवं सन्त आगस्टाइन के लेखों –उपदेशों के आधार पर विकसित किया।

काल्विन द्वारा प्रतिपादित धार्मिक अनुष्ठानादि, <u>लूथर की तुलना</u> में भी अधिक सरल थे। पादरियों को धार्मिक –सेवा में प्रार्थना , साधना एवं उपदेश देने भर के कार्य शामिल किये गये थे। लूथर की भांति कैल्विन ने भी रोमन कैथोलिक चर्च की सात अनुष्ठानिक-संस्कारादि में से केवल दो संस्कारों को अपनाया –नामकरण संस्कार (या बपतिस्मा) तथा "होली कम्युनियन" या ईश्वरीय भोज। लेकिन काल्विन के अनुसार ईश्वरीय भोज में व्यवहृत रोटी और शराब में ईसा की आत्मा की उपस्थिति केवल ईश्वर द्वारा चुने व्यक्तियों के लिए ही होती है। काल्विन ने अपने अनुयायी चर्चों के प्रशासनिक या प्रबंध कार्यों के लिए संगठन की जो व्यवस्था प्रतिमान निर्धारित की , वह बाईबिल में उल्लिखित आदि चर्च की व्यवस्था- प्रतिमान के अनुसरण पर आधारित थी। स्थानीय चर्चों का प्रबंध, धार्मिक मामलों के अतिरिक्त, साधारण गृहस्थों को बनाया गया जिन्हें एल्डर्स या (बुजुर्ग) कहते थे और इनका चुनाव सामुदायिक मतगणना द्वारा किया जाता था। एक पदसोपानात्मक प्रतिनिधि सभा अनुयायियों एवं चर्च पदाधिकारियों के द्वारा विश्वास एवं क्रियाकलापों में एकात्मकता बनाये रखी जाती थी।

काल्विनवादियों को लगभग सम्पूर्ण स्विट्जरलैण्ड, डच-नीदरलैण्ड, स्काटलैण्ड तथा जर्मनी के दक्षिणी क्षेत्रों में जन-समर्थन एवं धार्मिक नियंत्रण प्राप्त हो गया। इंग्लैण्ड तथा फ्रांस में भी [illegible] से अल्पसंख्यक किन्तु अत्यन्त शक्तिशाली समर्थन प्राप्त

Scanned by TapScanner

हुआ। संयुक्त राज्य अमेरिका की स्थापना में काल्विनवादियों ने अत्यन्त प्रभावशाली भूमिका निभायी थी। काल्विनवादी, सभी प्रमुख प्रारंभिक प्रोटेस्टैण्ट समूहों के प्रति अत्यन्त ईर्ष्यालु थे। नवोदित मध्यमवर्गीय जन-समूहों पर उनका बड़ा ही मजबूत प्रभाव पड़ा। जहाँ कहीं इनकी जड़ें जमीं, वहाँ लोकतंत्र एवं लोक-शिक्षा के विकास में इन्होंने अत्यन्त प्रभावशाली भूमिका अदा की।

आँग्लीशता या आँग्लवाद (ऐंग्लिकन धर्म)

आँग्लवाद की शुरुआत जिस अवसर से हुई, वह इंग्लैण्ड में सुधारवाद की प्रारंभिक घटना न होकर इंग्लैण्ड के राजा हेनरी अष्टम (1509–47) की जिद थी कि वह अपनी पहली पत्नी, अरगोन की कैथरीन को तलाक देकर अपना विवाह -विच्छेद कर सके। उसने पोप से निवेदन किया कि वह उसके विवाह-विच्छेद (या तलाक) को धार्मिक सहमति देने की घोषणा कर दें। लेकिन पोप ऐसा अभूतपूर्व कार्य करने की स्थिति में न था। जब उतावला हो रहे हेनरी ने पाया कि पोप उसकी इच्छा में मददगार नहीं होने वाला है, तब उसने अपने देश के तमाम धार्मिक मामलों की शाक्तियाँ और अधिकार अपने हाथों में ले लेना चाहा। उसकी ताबेदार-चापलूस संसद ने, उसकी इच्छानुसार "सर्वोच्चता का अधिनियम" (एक्ट ऑफ सुप्रिमेसी) पारित कर, इंग्लैण्ड के राजा को इंग्लैण्ड के चर्चों का प्रमुख घोषित कर दिया। इसके पश्चात इंग्लैण्ड के जिन मठों में पोप समर्थक साधुओं का बाहुल्य था, उन्हें विघटित कर दिया गया। लेकिन हेनरी अष्टम् कोई "प्रोटेस्टैण्ट" न था। तलाक वाले मामले से पूर्व, लूथर -विरोधी लेखों एवं वक्तव्यों के आधार पर पोप ने उसका सम्मान करते हुए उसे "धर्म - संरक्षक" (डिफेण्डर आफ द फेइथ) की उपाधि प्रदान की थी। अब उसके निर्देश पर इंग्लैण्ड की संसद ने छह धाराएँ पारित कीं, जिसके फलस्वरूप पोप की सर्वोच्चता को छोड़कर अन्य सभी विवादास्पद सैद्धांतिक मसलों पर कैथोलिक मान्यताओं को स्वीकार कर लिया गया।

हेनरी अष्टम् के पुत्र एडवार्ड षष्ठम् (1547–53) के शासनकाल के दौरान ही, इंग्लैण्ड के आँग्ल चर्चों ने सर्वप्रथम प्रोटेस्टैण्ट स्वरूप ग्रहण किया। आर्कबिशप क्रेमनर ने सामान्य प्रार्थनाओं की एक पुस्तिका प्रस्तुत की जिसमें धर्म के विश्वासों से सम्बंधित बयालीस धाराएँ थीं। कुल मिलाकर उस पुस्तक के आदर्शों-उपदेशों में काल्विनवाद की झलक मौजूद थी।

इसके पश्चात् इंग्लैण्ड के राजसिंहासन पर एलिजाबेथ प्रथम 1558– 1603 आसीन हुईं और साम्राज्ञी ने धर्म तथा धर्म -विषयक बातों को अत्यन्त उबाऊ और थकाने वाला पाया। उसके लम्बे शासनकाल में इंग्लैण्ड का आँग्लवादी चर्च निश्चित किन्तु मध्यम रूप से रूढ़िवादी प्रोटेस्टैण्ट चर्च में तब्दील हो गया। क्रेमनर की प्रार्थना पुस्तिका मामूली फेरबदल के साथ पुनः स्वीकृत हो गयी। कुछ अतिवादी काल्विन समर्थकों ने आँग्ल चर्च में मौजूद रोमन कैथोलिक धर्म की रूढ़िवादी मान्यताओं को दूर कर उसे "शुद्ध" बनाने की कोशिशें कीं। इन शुद्धिकरणवादियों की शक्ति धीरे-धीरे बढ़ती रही और अगली शताब्दी में, ओलिवर क्रॉमवेल के नेतृत्व काल में उन्हें कुछ नियंत्रणात्मक शक्तियाँ अस्थायी रूप से प्राप्त हुईं। रोमन कैथोलिक धर्म के अल्पसंख्यक समर्थकों की संख्या धीरे-धीरे घटती गयी।

Scanned by TapScanner

सारांश – सोलहवी शताब्दी के सातवीं दशक के मध्य तक प्रोटेस्टैण्टवाद का प्रचार जर्मनी के आधे उत्तरी भागों, स्कैण्डेनिवियन देशों, बाल्टिक प्रदेशों, लगभग सम्पूर्ण स्विटजरलैण्ड , डच, नीदरलैण्ड , स्काटलैण्ड तथा इंग्लैण्ड में हो चुका था। इसके साथ–साथ फ्रांस , पोलैण्ड, बोहेमिया तथा हंगरी में इसके मजबूत अल्पसंख्यक अनुयायी भी उत्पन्न हो चुके थे। रोमन कैथोलिक चर्च ;की व्यवस्था के खिलाफ प्रोटेस्टैण्ड धर्म ने मजबूत मोर्चाबंदी की थी। सभी प्रोटेस्टैण्टवादियों ने पोप की सर्वोच्चता तथा रोमन चर्च की वैधिक –स्वीकृति के सिद्धांत को ठुकरा दिया था। इसके साथ–साथ पादरियों के लिए ब्रह्मचर्य ‍‍ॅतथा अविवाहित रहने‍ॅ के नियम, मठवाद तथा रोमन कैथोलिक चर्च की अन्य विशिष्ट सैद्धान्तिक मान्यताएं जैसे निर्दोष बनाने ‍ॅपरगेटरी‍ॅ, साधुओं के तत्वान्तरित अभिचार ‍ॅट्रान्सबस्टैन्शिएशन इनवोकेशन ऑफ सेन्ट्स ‍ॅ तथा अवशेषों की पूजा भी समाप्त कर दिये गये । रोमन कैथोलिक तथा प्रोटेस्टैण्ट धर्म सम्प्रदायों के बीच के सैद्धान्तिक फर्क वस्तुतः इतने बुनियादी साबित हुए कि इन दोनों के बीच कोई समझौते अथवा समन्वय की गुंजाइश ही न बची।

(EBU, 6/9)

रोमन कैथोलिक सुधारवाद

रोमन कैथोलिक चर्च के लगभग आधे पश्चिमी योरोपीय चर्चों के अलग हो जाने तथा अन्य प्रदेशों में स्थित चर्चों के भी अलग हो जाने के सम्भावित खतरे ने रोमन कैथलिक चर्च के अन्तर्गत सुधारवादी प्रवृत्तियों को प्रेरित किया। सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक रोमन कैथोलिक सुधारवादी आन्दोलन गति पकड़ चुका था । रोमन कैथोलिक चर्च को पुनरुज्जीवित किया जा रहा था तथा प्रोटेस्टैण्ट धर्म–सम्प्रदाय के खिलाफ आन्दोलन भी छेड़ा जा रहा था । इसके फलस्वरूप न केवल प्रोटेस्टैण्ट धर्म सम्प्रदाय को रोमन कैथोलिक चर्च के अधीनस्थ क्षेत्रों में अपना प्रभाव बढ़ाने से रोका जा सका वरन् उन्हें थोड़ा पीछे भी धकेला जा सका।

लूथर एवं काल्विन के विद्रोह के पूर्व भी कई लोगों ने सुधार की मांग उठायी थी। स्पेन में, सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही , कार्डिनल जिमेनेस ने परिस्थितियों को भाँपकर भविष्यवाणी की थी कि प्रोटेस्टैण्ट विद्रोह सम्भव हो सकता है। अतः उसने पादरियों पर अनुशासन के सख्त नियम लागू करने और विद्रोहियों से सख्ती से निपटने की माँग उठाई थी । लेकिन अधिकांश पश्चिमी योरोप के इसाई चर्चों में, पुनर्जागरण से प्रभावित पोपों के धर्म निरपेक्ष हित –स्वार्थों को यह भय था कि यदि वे चर्च के नियमों में सुधार की कोई कोशिश करेंगे तो यह पवित्र प्रधान पोप की निरपेक्ष –सत्ता के खिलाफ किया गया कृत्य माना जा सकता है। अतः कोई प्रभावशाली कदम समय रहते उठाया न जा सका। अब, जब राज्य के राज्य प्रोटेस्टैण्ट धर्म के प्रभाव में जाने लगे तो इसे रोकने के लिए कठोर कदम उठाये जाने की अनिवार्यता हो गयी । लेकिन सम्भावित क्रिया–कलापों की दिशा क्या हो ? – इसे निश्चित करने के क्रम में विचारों की दो धाराएं उत्पन्न हो गई । एक विचारधारा का नेतृत्व वेनिस के कार्डिनल कोन्टाराइन कर रहे थे जिन्होंने समझौतावादी दृष्टिकरण की नीति अपनाये जाने की सलाह दी । दूसरी विचार–धारा का नेतृत्व नेपल्स के पुरातनपंथी कार्डिनल कैराफा कर रहे थे जिनको विश्वास था कि चर्च के

Scanned by TapScanner

आचार–व्यवहार में मौजूद भ्रष्टाचारों को सुधार कर उन्हें दूर अवश्य किया जाय किन्तु विश्वास (या अन्धविश्वास) एवं धर्म संबंधी मान्यताओं में सुधार या समझौते की कोई कोशिश न की जाए। उनका विचार था कि प्रोटेस्टैण्ट मतावलम्बी उद्दण्ड और जल्दबाज हैं तथा उन्हें केवल तभी रोमन कैथोलिक चर्च की अधीनता में वापस आने दिया जाय जब वे पोप के सामने श्रद्धावनत होकर आयें और पोप को अपनी सर्वोच्च सत्ता स्वीकार करें।

अन्ततः इसी विचारधारा की विजय हुई और कैरप्पा पोप बने (पोप पॉल चतुर्थ) उनके विचारों की परिणति अन्ततः उत्तरी इटली के एक शहर ट्रेण्ट में, चर्च –समीति की बैठक आयोजित करने में हुई।

ट्रेण्ट में आयोजित समिति की बैठक का सत्र वर्ष 1545 से वर्ष 1563 तक निरन्तर चलता रहा और इसने सभी पारम्परिक रूप से प्रचलित चर्च के नियमों एवं सिद्धान्तों तथा विश्वासों, विशेषकर विवादस्पद सैद्धांतिक मान्यताओं तथा उन सात अनुष्ठानिक संस्कारादि का प्रचलन जारी रखे जाने के पक्ष में अपना निर्णय दिया जिन्हें प्रोटेस्टैण्ट आन्दोलनों ने अमान्य घोषित किया था। चर्च के नियम एवं व्यवहारादि के संदर्भ में इस धर्म –समिति ने भ्रष्टाचार की मौजूदगी का तथ्य स्वीकार किया तथा उन्हें निर्मूल करने के लिए कठोर कदमों और उपायों के सुझाव दिये। पादरियों के बीच मौजूद भ्रष्ट –क्रियाकलापों जैसे – धर्म –विक्रय (सिमोनी), भाई –भतीजावाद (नेपोटिज्म), अनेक वृत्तिभोग (प्लूरलिज्म) अनैतिक एवं अज्ञानी दृष्टिकोण तथा व्यवहारों की तीव्र निन्दा की। पादरियों की उचित धार्मिक शिक्षा के लिए विद्यालयों की स्थापना के सुझाव दिये गये। चर्च के बिशपों के फटकार भरी चेतावनी और आदेश दिये गये कि वे निचले वर्ग के पादरियों पर कड़ी नजर रखें और उन्हें अनुशासन में रहने को बाध्य करें।

धर्म–विहित गिरजे (चर्च) के कानूनों एवं शीर्ष पदों के आदेश–निर्देश एवं निर्णयों को ठीक ढंग से क्रियान्वित करने के लिए, इस धर्म–समिति ने धर्माधिकरण (इनक्विजिशन) को अपनी मंजूरी दी, जिसकी स्थापना अभी हाल में रोम में की गयी थी, ताकि विधर्मी –सम्प्रदाय के अनाधिकृत – धार्मिक– मतों को समाप्त किया जा सके। इस धर्म समिति ने निषेधित पुस्तकों की एक सूचि भी उद्घाटित की ताकि अनाधिकृत (अनऑथराइज्ड) रोमन कैथलिकों को विधर्मी साहित्य पढ़ने से रोका जा सके। नियंत्रण के ये दोनों उपकरण या अंकुश पोप के हाथों में सौंप दिये गये। निषेधित पुस्तकों की सूची निश्चित एवं नियमित अन्तराल पर संशोधित–निरीक्षित की जाती थी। यह उपाय उल्लेखनीय रूप से असरदार साबित हुआ। इस प्रकार अन्ततः रोमन कैथोलिक चर्च ने अपनी रणनीतियों का खुलासा इजहार किया और उपयुक्त अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित होकर प्रोटेस्टैण्ट धर्म के खिलाफ जिहाद (जेहाद) छेड़ दिया। रोमन कैथोलिक चर्च की सेवा में आक्रामक युद्ध प्रिय शासकों सम्राटों की नयी जमात और सोलहवीं शताब्दी के विश्व की महानतम सैन्य शक्ति, स्पेन के फिलिप द्वितीय शामिल थे।

द <u>सोसाइटी</u> <u>आफ</u> <u>जेसस</u> <u>––</u> की स्थापना इगनेटियस लोयला (1491–1556) ने की थी, जो लूथर एवं काल्विन की श्रेणी के प्रभावशाली व्यक्तित्व, संगठनकर्त्ता एव प्रखर नेतृत्व – शक्ति सम्पन्न थे। द सोसाइटी आफ जेसस (जिसे जेस्यूट आर्डर भी कहा जाता है) को सैनिक ढंग से संगठित किया

गया था। सोसाइटी का प्रमुख एक "जेनरल" होता था, जो जीवन भर के लिए इस पद पर निर्वाचित किया जाता था। रोम में उसका निवास और मुख्यालय था जहाँ से वह अपने आदेश-निर्देश एवं निर्णय निर्गत करता था। जिन्हें पदाधिकारियों -कर्मचारियों की पदसोपानात्मक व्यवस्था द्वारा सामान्य जनों तक पहुँचा दिया जाता था। सम्पूर्ण आज्ञाकारिता और निश्छल आज्ञापालन इस समाज की पहली शर्त थी। इस समाज के सदस्यों को अनिवार्यतः अपने सभी सांसारिक -सामाजिक सम्बन्धों, मित्र, परिवार एवं रिश्तेदारों को त्याग देने को कहा जाता था ताकि उनकी निष्ठा और वफादारी विभाजित न हो तथा वे समाज के कार्यों को अंजाम दे सकें और वे तन-मन एवं दिलो दिमाग से समाज के लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक हो सकें। सदस्यता ग्रहण करने के इच्छुक आवेदनकर्त्ताओं की बड़ी सूक्ष्म जाँच-पड़ताल की जाती थी। केवल उच्च प्रतिभा सम्पन्न, स्वस्थ एवं आकर्षक व्यक्तित्व वाले लोगों को ही चुना जाता था। इसके पश्चात उन्हें दो वर्षों की अवधि वाले परीक्षण-प्रशिक्षण के दौर से गुजरना पड़ता था, ताकि उनकी कर्मठताओं एवं उद्देश्य प्रतिबद्धता की जाँच हो सके। इस परीक्षण अवधि में चुने गये सफल अभ्यर्थियों को दीर्घकालिक विस्तृत शिक्षा देकर शास्त्रीय -पांडित्य से परिपूर्ण बनाया जाता था और जब वे सभी दृष्टि से तैयार हो गये पाये जाते थे तभी उन्हें समाज की सम्पूर्ण सदस्यता प्रदान कर सहयोगी बनाया जाता था। इसके पश्चात् उन्हें पादरी, शिक्षक, चिकित्सक या कूटनीतिक-राजनयिक बनाया जाता तथा इनकी प्रतिभा, क्षमता, योग्यता अथवा प्रशिक्षण के अनुरूप कोई भी कार्य भार सौंपा जाता था। कई वर्षों के सेवाकाल के पश्चात् असाधारण रूप से कुशल एवं प्रखर कुछ व्यक्तियों को सर्वोच्च समिति का सदस्य बनाया जाता था। समाज के सभी उच्चस्थ पदाधिकारी इसी सर्वोच्च आन्तरिक समिति से चुने जाते थे।

समाज के सदस्यों की प्रेरणा एवं आध्यात्मिक मार्ग-दर्शन के लिए लोयला ने स्वयं आध्यात्मिक - अभ्यासों के तरीके तलाश कर लिए थे। उनका यह कार्य शिथिल पड़ते धार्मिक मनोबल एवं उत्साह के समग्र बेहद शक्तिशाली प्रेरणास्त्रोत साबित हुआ। लोयला के अपने जीवन -चरित का उच्च- आदर्शात्मक -स्तर, अनुयायियों के लिए प्रबल आकर्षण एवं विरोधियों के लिए कठिन चुनौती साबित हुआ। पादरी के रूप में जेस्यूट समाज के सदस्य सदैव सर्वाधिक प्रशिक्षित, लोकप्रिय एवं अत्यधिक प्रभावशाली साबित हुए। शिक्षक के रूप में वे सामान्यतः उच्च शिक्षा प्राप्त, आकर्षक एवं अपने प्रतिस्पर्धियों की अपेक्षा अधिक प्रतिबद्ध साबित हुए। शिक्षा के सामर्थ्य के प्रति वे सदैव अतिशय जागरूक रहे, विशेषकर नयी पीढ़ियों के सन्दर्भ में। जल्दी ही, लगभग सभी कैथोलिक देशों के शिक्षण-संस्थानों पर जेस्यूटस समाज का आधिपत्य कायम हो गया।

जेस्यूट समाज धीरे-धीरे सम्राटों, राजकुमारों एवं उच्च शासकीय वर्ग के व्यक्तियों का विश्वास जीतता गया। फलतः राष्ट्रीय नीतियों पर भी इसके प्रभाव पड़ने लगे। सैन्य-संगठनात्मक ढाँचे में आबद्ध इस समाज ने रोमन कैथोलिकवाद की ढुलमुल नीतियों एवं मनःस्थिति को संगठित करने की दिशा में अत्यन्त शक्तिशाली प्रेरणा दी। इटली, स्पेन, पुर्तगाल तथा आयरलैण्ड जैसे देशों में, जहां -जहां प्रोटेस्टैण्ट धर्मावलम्बियों की संख्या सीमित थी और उनकी जड़ें कमजोर थीं, वहां से जेस्यूट समाज ने उन्हें पूरी तरह उखाड़ फेंका। दक्षिणी जर्मन भूभाग, पोलैण्ड तथा आस्ट्रियन-हैप्सबर्ग साम्राज्य के समस्त भू-भाग, जो

Scanned by TapScanner

[illegible] समय प्रोटेस्टैण्ट धर्म – सम्प्रदाय की चपेट में जाते प्रतीत होते थे। अब ([illegible]) [illegible] समाज के उदय ने इसका रुख उलट दिया और आज भी ये समस्त [illegible] रोमन कैथोलिक धर्म के मजबूत गढ़ बने हुए हैं।

प्रोटेस्टैण्ट धर्म सम्प्रदाय के खिलाफ संघर्ष में रोमन कैथोलिक चर्च को विश्व की तत्कालीन सर्वाधिक शक्तिशाली सैनिक [illegible] की सेवाएँ प्राप्त थीं– स्पेन के सम्राट फिलिप द्वितीय की शक्तिशाली सेना। फ्रांस तथा जर्मनी में प्रोटेस्टैण्ट सम्प्रदाय के खिलाफ रोमन कैथोलिक चर्च के संघर्ष की परिणति अत्यन्त कटु धर्मयुद्धों के रूप में हुई, जो सोलहवीं शताब्दी के अन्त एवं सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक कालों में लड़ी गयी थीं। धर्मोन्मत्त स्पेन ने इन धर्मयुद्धों में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। लेकिन इन जगहों पर उसकी भूमिका अपेक्षाकृत तुच्छ एवं अनिर्णायक रही। अन्ततः ये धर्म युद्ध तीस वर्षीय युद्ध के पश्चात ही समाप्त हो सके।

Scanned by TapScanner